

दलित कवियों का राजनैतिक चिंतन



करतार सिंह

सह आचार्य,
हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर



देवी प्रसाद

व्याख्याता,
हिन्दी विभाग,
एस.एन.के.पी. राजकीय
महाविद्यालय, नीमकाथाना,
सीकर

सारांश

राजनीति और साहित्य का प्रभाव कमोबेश एक-दूसरे पर देखने को मिलता है। वर्तमान दौर में जब प्रत्येक क्षेत्र राजनीति से प्रेरित और प्रभावित दिखाई देता है, तो दलित कविता भी इसके प्रभाव से वंचित नहीं हो सकती। दलित कवियों पर प्रायः यह आरोप लगाया जाता है, कि ये कवि कविता कम और कविता के बहाने राजनीति अधिक करते हैं। दलित कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से दलितों की राजनैतिक स्थिति को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। दलित कवियों ने भारतीय राजनीति के असली चेहरे को उजागर किया है।

मुख्य शब्द : राम-राज्य, दलितों की समस्या, मानवाधिकार, मानव-मूल्य, प्रजातंत्र, चुनावी नारे, दमनकारी चेहरे, शोषित जनता, समता, स्वतंत्रता, भाईचारा, कॉमरेड, लोकतंत्र का चरित्र, समाजवाद, अभिजात्य वर्ग, संविधान, अध्यात्म, रोटी और सम्मान।

प्रस्तावना

देश को आजादी मिले हुए पैंसठ वर्ष से अधिक हो गए हैं। इन पैंसठ सालों में देश और दुनिया में अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, वैज्ञानिक और न जाने कौन-कौन से परिवर्तन हुए हैं, परन्तु लोकतंत्र के वर्तमान दौर में भी दलितों की स्थिति कमोबेश यथावत है, उनके सामाजिक जीवन में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ है। हाँ! सरकारी नौकरियों के चलते कुछ शिक्षित लोगों की रोटी-पानी की आवश्यकता जरूर पूरी हो रही है। इस मायने में उनके लिए देश में लोकतंत्र के होने या न होने का कोई अर्थ नहीं है, या रूँ कहे कि आजादी उनके लिए अभी भी कभी न पूरे होने वाले स्वप्न की तरह है। गांधीजी ने आजादी के साथ राम-राज्य की कल्पना की थी, लेकिन दलित का दर्द यह है कि राम-राज्य में वह अपने लिए कोई जगह ही नहीं पाता है। मराठी के प्रसिद्ध दलित कवि नामदेव ढसाल दलितों के इस दर्द को अपने शब्दों में बयान करते हुए पूछते हैं:-

“स्वतंत्रता किस गदही का नाम है
रामराज्य के किस कोने में हम आते हैं।”¹

उद्देश्य

हिन्दी साहित्य में समय-समय पर अनेक काव्यधारा प्रचलित रही हैं। वर्तमान में हिन्दी दलित कविता को लेकर चतुर्दिक चर्चा सुनाई देती है। दलित कविता दलितों की समस्याओं, पीड़ाओं को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का कार्य कर रही है। आज प्रजातांत्रिक शासन में भी दलित समाज को अनेक प्रताड़नाओं से रूबरू होना पड़ता है, तो सवाल उठता है, कि क्या इस प्रजातंत्र में दलितों को भी उतने ही अधिकार प्राप्त हैं, जितने दूसरे लोगों को हैं? अगर ऐसा नहीं है, तो दलितों के लिए वास्तविक प्रजातंत्र कब आएगा? दलित कवि ऐसे सवालों को उठाने का कार्य अपनी रचनाओं के माध्यम से कर रहे हैं। इस लेख के माध्यम से दलित कवियों के इसी राजनैतिक चिंतन को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का अल्प प्रयास किया गया है।

देश के आजाद होते ही सभी की कल्पना थी कि अब स्वराज आ गया है। परन्तु यह मात्र एक स्वप्न ही रह गया, दलितों की समस्याओं और पीड़ाओं में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। आज दलित स्वतंत्र देश में भी परतंत्र नागरिक की तरह जीवन जीने को मजबूर हैं। वे अभी भी मानवीय अधिकारों और न्याय के लिए संघर्ष कर रहे हैं। दलितों के मन में इस बात को लेकर रोष और शिकायत है कि देश की आजादी ब्राह्मणवादी वर्ग और अंग्रेजों के बीच एक राजनैतिक सौदेबाजी थी, फलतः भारतीय लोकतंत्र पूँजीवादी व्यवस्था के हाथों में चला गया, मानवीय मूल्यों की पूरी तरह उपेक्षा की गयी:-

“दो चार चमन में फूल खिले कहते ऋतुराज वसंत हुआ।
दूठों पर नजर नहीं डाली जिनके जीवन का अंत हुआ।।
परकटे परिन्दों से पूछो जिनका धूँ-धूँकर नीड़ जला।
आजाद हुआ बस लाल किला।।”²

कहा जाता है कि प्रजातंत्र जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा शासन है। जनता के पास सबसे बड़ी ताकत वोट का अधिकार है, इसकी ताकत से वह अपना नेता स्वयं चुन सकती है, परन्तु क्या सामान्य जनता, जो कि बहुसंख्यक है, अपने इस अधिकार का प्रयोग बिना किसी भय के सही तरीके से कर पा रही है? क्या राजनीति में सब कुछ वैसा ही है, जैसा ऊपर से दिखाई देता है? नहीं ऐसा नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि जनता के हाथों में केवल नेता चुनने का अधिकार है....

.....चुने जाने के बाद मतदाता के तमाम हक रसातल में चले जाते हैं और जनता हर हाल में नेताओं को पाँच साल झेलने को मजबूर होती है। भारतीय राजनीति की यह समस्या दूर हो सकती है, यदि जनता को अपने चुने हुए प्रतिनिधियों को, अपेक्षित कार्य न करने पर वापस बुलाने का अधिकार प्राप्त हो जाए। प्रजातंत्र की इस धिनौनी वास्तविकता से दलित कवि परेशान है, इसलिए वह कह उठता है:-

“दिन भर-/चुनावी नारे/भाषण, गाने/कान के पर्दे फाड़ते हैं/रात में/छुटभइये नेता/जाति, धर्म, क्षेत्र रूपी/वैश्याओं की दलाली करते हैं/दारु दिखा/वोट की लगाते हैं बोली,/यही नहीं/लाठी और बन्दूक की/दिखाते हैं खूब धमकी/इन वोट के सौदागरों ने/मेरा दिन का चैन/रातों की नींद/सब कुछ छीन लिया है।”³

सरकार का दायित्व है कि वह हर नागरिक के अधिकारों की रक्षा करे और उसे जीवन यापन की मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध करवाए। आजादी का अर्थ है कि मानव भय-रहित होकर सम्मानपूर्वक, बिना किसी भेदभाव के अपने अधिकारों का उपभोग करे। कुछ लोगों के लिए यह वास्तविकता हो सकती है, परन्तु स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी दलित-वर्ग घृणा, हिंसा, अपमान, अन्याय और शोषण का शिकार हो रहा है। इसलिए उसे इस लोकतंत्र में कहीं पर कुछ भी अपना और सुखकर नहीं लगता। गाली, यातना और बलात्कार सहते-सहते वह टूट-सा हो गया है। अपनी इन समस्याओं और दुखों के कारण वह आजादी का अनुभव नहीं कर पाता है:-

“झूठे हैं वे लोग जो कहते हैं

भारत आजाद है

भारत गुलाम है आज भी

ब्राह्मणशाही और

पूंजीवाद की तानाशाही का-

पुलिस, न्याय, शासन प्रशासन सभी

दमनकारी चेहरे हैं

शिकार है शोषित जनता।”⁴

मानव, मानव इसलिए है कि उसके कुछ नैतिक मूल्य हैं, जिनसे वह समाज को सुन्दर और सुखी बनाता है। मनुष्य के लिए समता, स्वतंत्रता और भाईचारा नैतिक मूल्य हैं और ये नैतिक मूल्य ही प्रजातंत्र का आधार भी हैं। यदि किसी समाज में नैतिक मूल्यों का अभाव है तो इसका साधा सा अर्थ है कि वहाँ लोकतंत्र नहीं है और ऐसे लोकतंत्र का दलितों के लिए कोई औचित्य नहीं है, नामदेव ढसाल के शब्दों में:-

“यह प्रजातंत्र नहीं है

कहो-कहो कामरेड, डंड टोक कर कहो-

दो-दो दवंडी कामरेड-यह जनतंत्र नहीं है

यह विडम्बना सतरह पीढ़ियों की-

चुप रहकर परोसी हुई।”⁵

ऐसा लोकतंत्र जिसमें समाज के प्रत्येक वर्ग/समुदाय को समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं। जहाँ दलितों को हर कदम पर शोषण का शिकार होना पड़े, जहाँ वे खुलकर श्वास भी नहीं ले सकते, उन्हें ऐसा लोकतंत्र जाली लगता है:-

“दलितों के लिए/आजादी एक गाली है

इस लोकतंत्र का/चरित्र बदलना होगा

क्योंकि यह लोकतंत्र जाली है।”⁶

दलितों को अपना पेट पालने के लिए ऐसे अनेक काम करने पड़ते हैं, जो मानवता को शर्मसार करने वाले हैं। ऐसी ही एक प्रथा सिर पर ‘मैला ढोने की प्रथा’ भी है, जो अब भी हमारे देश के कुछ हिस्सों में जारी है। यद्यपि कहने को कोई भी काम छोटा नहीं होता है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। दलितों को ऐसे काम दिए गए, जो घृणित समझे जाते थे। बेशक जनतंत्र जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा चलाए जाने वाला शासनतंत्र माना जाता है, परन्तु जहा जाति के कारण ही दलितों को ऐसे अमानवीय और घृणित कार्य करने पड़ें, वहाँ लोकतंत्र दलित कवि को गाली लगता है:-

“जब तक रामेसरी के हाथ में

खड़ांग-खड़ांग घिसकती लौह गाड़ी है

मेरे देश का लोकतंत्र एक गाली है।”⁷

डॉ. ईश कुमार गंगानिया राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार और अपराध पर व्यंग्य करते हुए अपनी कविता ‘कब ठहरेगी’ में लिखते हैं:-

“राजनीति की गाड़ी/घण्टों ठहरती

है/रिश्वत/घोटाले/शोषण/अपराध के/धिनौने

स्टेशनों पर/बेचैन हूँ मैं सोच-सोचकर/कब

ठहरेगी/गरीबी/अशिक्षा/असमानता से/मुक्ति

दिलाने वाली गाड़ी/समाजवाद के स्टेशन पर।”⁸

देश राजनैतिक रूप से स्वतंत्र भले ही हो गया हो, परन्तु सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वह आज भी कुछ अभिजात्य वर्गों का मोहताज बना हुआ है। विशेष रूप से दलित समाज समानता, समता तथा आजीविका के लिए दूसरे तथाकथित उच्च वर्ग के अधीन है। “किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता का मतलब होता है कि वह समानता, न्याय और भ्रातृत्व का जीवन जीता है। यदि कोई व्यक्ति, वर्ग या जाति सामाजिक, आर्थिक किसी भी रूप से किसी दूसरे व्यक्ति, वर्ग या जाति पर निर्भर या उसके अधीन रहता है तो उसे स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता है। भारत में दलित वर्ग इसी तरह का वर्ग है जो सामाजिक व आर्थिक सभी प्रकार से सवर्ण हिन्दुओं के ऊपर निर्भर और परतंत्र है। देश की स्वतंत्रता तब तक अर्थहीन और महत्त्वहीन है, जब तक दलित लोग भी स्वतंत्रता का अनुभव नहीं करते। इसी कारण डॉ. भीमराव अंबेडकर देश की आजादी से पहले दलितों की सामाजिक आजादी और उनके हित-संरक्षण के पक्षधर थे। इसी में वह देश की आजादी की अक्षुण्णता तथा लोकतंत्र की मजबूती और विकास की गारंटी देखते थे। किन्तु यह देश की विडम्बना और दलितों का दर्द है कि ऐसा नहीं हुआ। वे अभी भी मानवीय अधिकारों और न्याय के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

दलितों के मन में इस बात को लेकर रोष और शिकायत है कि देश की आजादी ब्राह्मणवादी वर्ग और अंग्रेजों के बीच एक सौदेबाजी थी जिसमें मानवीय मूल्यों की पूरी तरह उपेक्षा की गयी।⁹ शहरों की बात छोड़ दें तो आप पाएंगे कि देहातों में बसा दलित समाज आज भी रोटी का मोहताज तो है ही, परन्तु इससे भी अधिक, वह सामाजिक सम्मान का भूखा है:-

**“निषिद्ध हैं जिसके लिए आज भी
बहुत से सार्वजनिक स्थल
निषिद्ध हैं शासन और सत्ता के प्रतिष्ठान
बेमानी हैं उसके लिए
आजादी और लोकतंत्र की बातें
व्यर्थ हैं संसद और संविधान
नहीं चाहिए उसे
नीति और धर्म की शिक्षा
नहीं चाहिए अध्यात्म का ज्ञान
उसे चाहिए रोटी और सम्मान।”¹⁰**

वर्तमान युग में जब जीवन का प्रत्येक क्षेत्र राजनीति से प्रभावित है तो कविता भी राजनीति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। ‘हिन्दी दलित कविता’ में भारतीय राजनीति का बदलता परिवेश स्पष्ट झलकता है। बदलते राजनैतिक परिवेश का प्रभाव न केवल नगरीय परिवेश पर, बल्कि ग्रामीण परिवेश पर भी दिखाई देता है। ऐसा नहीं है कि केवल दलित वर्ग के रचनाकारों पर ही राजनीति का प्रभाव दिखाई देता है, अपितु हिन्दी साहित्य के बहुत से रचनाकारों पर राजनीति का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

आजादी के बाद ये स्वप्न देखा गया था कि एक समतावादी समाज की स्थापना होगी, न कोई अमीर होगा न कोई गरीब, जाति, वंश, धर्म के आधार पर न कोई उच्च होगा न कोई निम्न। भारतीय संविधान इसकी वकालत भी करता है, लेकिन यह आजादी धनिक और भ्रष्ट राजनेताओं की बपौती बन कर रह गई है। धर्म के ठेकेदारों ने पवित्रता का ढोंग रचाकर केवल अपनी स्वार्थ-साधना की है। दलितों पर आज भी अन्याय और अत्याचार होता रहता है। ऐसी स्थिति में दलितों के लिए आजादी कोई मायने नहीं रखती है। दलित कवि ऐसी स्वतंत्रता और गणतंत्र को निरर्थक मानता है:-

**“पन्द्रह अगस्त के दिन/फूल चढ़ाने पर
उण्डे मिले। पण्डे ‘देवपाल’ के
अछूत को/उसी की बेटी के साथ
बलात्कार हुआ
और मन्दिर अपवित्र नहीं हुआ
छब्बीस जनवरी की रात को
स्वतंत्र भारत के
छोटे से गांव में।”¹¹**

कवल भारती दलित कविता की राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक भूमिका के संबंध में लिखते हैं, “दलित कविता, सिर्फ इसलिए दलित कविता नहीं है कि वह दलित जीवन से जुड़ी है, बल्कि वह इसलिए भी दलित कविता है कि उसने शोषण करने वाली व्यवस्था को बेनकाब किया है। वह न सिर्फ राजसत्ता से बल्कि धर्मसत्ता से भी टक्कर लेती है।”¹²

जिस राजनैतिक संवेदना को हम दलित-कविता में देख रहे हैं अथवा खोज रहे हैं.....वो केवल और केवल किताबी ही लगती है.....ऐसा गैर-दलित-कवि ही नहीं मानते, अपितु बुद्धिजीवी दलितों का भी कमोबेश ऐसा ही मानना है। दलित समाज राजनैतिक स्तर पर न जाने कितने राजनैतिक दलों का पैरोकार बन गया है। ऐसा लगता है कि दलित कवियों ने बाबा साहेब की राजनैतिक भावना को सिरे से ठुकरा दिया है। दरअसल, अधिकतर दलित-कवि केवल कविता तक ही सीमित हैं, धरातल पर समाज को राजनैतिक रूप से सक्षम बनाने का प्रयास बहुत कम करते हैं। इसलिए यह राजनैतिक चिंतन किताबी ज्यादा लगता है। कुछ कवि तो कविता कम और कविता के जरिये राजनीति ज्यादा करते हैं। इन सबके बावजूद अगर समग्र रूप से मूल्यांकन किया जाए तो दलित-कवि आज के राजनैतिक परिदृश्य का चित्रण कर समाज के समक्ष दलितों की राजनैतिक स्थिति का आकलन करते हैं। साहित्य, समाज को पूरी तरह बदल नहीं सकता, उसे सावचेत कर सकता है और यह काम दलित-कवि बहुत अच्छी और पूरी सशक्तता के साथ कर रहे हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि किसी भी काव्यधारा की अपनी न्यूनताएँ होती हैं, दलित कविता की भी कुछ न्यूनताएँ रही हैं, परन्तु दलित कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से दलित समाज के राजनैतिक पिछड़ेपन को उजागर करने के साथ भारतीय राजनीति के चेहरे को बेनकाब करते हैं। दलित कवियों ने अपनी कविता में राजनीति के चरित्र में बदलाव की बात की है, जो आज के दौर में बहुत ही आवश्यक हो गया है। वर्तमान दौर में जिस तरह से नेताओं का राजनैतिक पतन हो रहा है, दलित कवि इस पतन से आहत है इसलिए वह ऐसे प्रजातंत्र को बदलकर उसके स्थान पर वास्तविक प्रजातंत्र की स्थापना करना चाहता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- 1- नामदेव ढसाल, (‘दलित विमर्श साहित्य के आइने में’, पृ. सं. 68 से उद्धृत)
- 2- लक्ष्मीनारायण सुधाकर, ‘उत्पीड़न की यात्रा’, पृ. सं. 23
- 3- ईश कुमार गंगानिया, ‘हार नहीं मानूंगा’, पृ. सं. 44
- 4- वही, पृ. सं. 89
- 5- नामदेव ढसाल, (‘दलित विमर्श साहित्य के आइने में’, पृ. सं. 69 से उद्धृत)
- 6- नवेन्दु महर्षि, ‘संसद तो सवर्ण है’, पृ. सं. 24
- 7- ओम प्रकाश वाल्मीकि, ‘सदियों का संताप’, पृ. सं. 31
- 8- ईश कुमार गंगानिया, ‘हार नहीं मानूंगा’, पृ. सं. 51
- 9- डॉ. जयप्रकाश कर्दम, ‘दलित विमर्श : साहित्य के आइने में’, पृ. सं. 68
- 10- जयप्रकाश कर्दम, ‘गूंगा नहीं था मैं’, पृ. सं. 28
- 11- लालचन्द राही, (बीसवीं सदी की हिन्दी दलित कविता, पृ. सं. 112 से उद्धृत)
- 12- कवल भारती, ‘दलित निर्वाचित कविताएं’, (भूमिका) पृ. सं. 23